राजस्थान की नई पाठ्यपुस्तकें

वैचारिक दबाव या हड़बड़ाहट?

अपूर्वानन्द से प्रमोद की बातचीत

अगर आपने यह सोच लिया है कि स्कूलों के माध्यम से अपनी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करेंगे क्योंकि वहां लोग आराम से उपलब्ध हैं। तो यह अपराध है। किताबें हों या स्कूल हों यह सब कर दाताओं के पैसे से चलते हैं। कर दाता हर समुदाय के हैं, हर जाति के हैं, हर धर्म के हैं तो आप मेरे पैसे से मेरे ही खिलाफ काम नहीं कर सकते।

प्रश्न : राजस्थान की नई पाठ्यपुस्तकें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के आधार पर बनी होने का दावा करती हैं इस बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के कुछ सिद्धांत हैं। पाठ्यचर्या कहती है कि पाठ्यपुस्तकों का एक तरह से विकेन्द्रीयकरण होना चाहिए। यानी वह उत्साहित करती है राज्यों को कि वह अपनी पाठ्यपुस्तकें तैयार करें। लेकिन जैसा मैंने शुरू में कहा कि पाठ्यचर्या के भी कुछ सिद्धांत हैं, जिनमें पाठ्यपुस्तकों को लेकर भी एक मान्यता निहित है। जैसे कि पाठ्यपुस्तकें किस प्रकार बनें। पाठ्यपुस्तकों की भूमिका क्या है? कक्षा में और पाठ्यपुस्तकों की योजना में क्या है? इन प्रश्नों पर विचार किए बिना सिर्फ जुबानी जमा-खर्च करना और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के प्रति सभ्य निवेदन करना, इसका कोई अर्थ नहीं है। तो हमें जो देखना चाहिए वह यह है कि राजस्थान की आज की जो स्कूली किताबें हैं वे क्या राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के इन सिद्धांतों का पालन करती है? क्या वे उसको समझ पाई हैं? ये दो प्रश्न हैं।

अब दो सिद्धांत क्या हैं? पाठ्यपुस्तक के बारे में समझ क्या है? पाठ्यपुस्तक के बारे में समझ यह है कि यह एक ऐसी सामग्री है जिसका इस्तेमाल अध्यापक और छात्र करते हैं। दूसरे यह कोई एकमात्र और आधिकारिक ज्ञान का स्रोत नहीं है। पाठ्यपुस्तकों को दूसरी पुस्तकों को कक्षा में प्रवेश

यशपाल समिति कहती है कि पढ़ाई चाहे पाठ्यपुस्तकों से हो या दूसरे माध्यम से हो वह ज्यादातर समझ में नहीं आती है। तो मामला सघनता का है। सघनता नकारात्मक है। पाठ्यपुस्तकें इस बेचैनी से भरी रहती हैं कि वो ज्यादा से ज्यादा जानकारी बच्चों को दे दें, अधुनातन जानकारी दे दें, आज तक की दे दें ताकि हमारे बच्चे पिछड़े हुए न रह जाएं, वगैरा, वगैरा।

करने की जगह बनानी चाहिए। पाठ्यपुस्तकें किस सिद्धांत के आधार पर बनेंगी? उस सिद्धांत के आधार पर जिस आधार पर बाकी स्कूली कार्यक्रम हों। वह यह है कि जो स्कूली ज्ञान है वह जो बच्चे हैं उनकी जिन्दगी से उसका रिश्ता दिखना चाहिए। दूसरे पाठ्यपुस्तक इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि वह बहुत बोझिल न हो। यह यशपाल समिति 1992-93 की रिपोर्ट से समझ में आता है जिसमें उन्होंने बच्चे के बोझ की बात की थी। लेकिन बच्चे के बोझ को कुछ लोगों ने भौतिक बोझ से मिला दिया। मामला वो नहीं है यशपाल समिति यह कहती है कि जो पढ़ाई होती है वह चाहे पाठ्यपुस्तकों से हो या दूसरे माध्यम से हो वह ज्यादातर समझ में नहीं आती है। तो मामला सघनता का है। सघनता नकारात्मक है। पाठ्यपुस्तकें इस बेचैनी से भरी रहती हैं कि वो ज्यादा से ज्यादा जानकारी बच्चों को दे दें, अधुनातन जानकारी दे दें, आज तक की दे दें ताकि हमारे बच्चे पिछड़े हुए न रह जाएं, वगैरा, वगैरा। तो जानकारियों का बोझा बन जाती हैं पाठ्यपुस्तकें। एक जानकारी और दूसरी जानकारी के बीच में रिश्ता क्या है? जानकारी कहां व कैसे ज्ञान में तब्दील होती है? इनको लेकर कोई पूरी समझ पाठ्यपुस्तक बनाने वालों के पास हो यह दिखलाई नहीं पड़ता है। तो हमें दरअसल जो चीज देखनी चाहिए वो यह है कि राजस्थान की अभी की किताबें क्या वास्तव में 2005 की स्कूली राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सिद्धांतों को समझ पा रही हैं या सिर्फ चूंकि उन्हें मान्य माना जाता है तो उनके प्रति श्रद्धा निभाई जा रही है।

प्रश्न : वे सिद्धांत जिनकी आप बात कर रहे हैं, उन सिद्धांतों की रोशनी में अगर इन किताबों को देखें तो वे किस तरह की प्रतीत होती हैं? किस तरह की नजर आती हैं?

उत्तर : देखिए, इन किताबों को सरसरी तौर पर देखने से यह मालूम होता है और कुछ पाठों को गहराई से देखने से यह मालूम होता है कि एक तो यह नए सिरे से नहीं लिखी गई हैं। यानी अभी तक राजस्थान में जो किताबें चल रही थीं, 2015 तक, बल्कि अभी भी कक्षाओं में हैं; ये नई किताबें उन किताबों का प्रायः संपादित रूप है। कुछ जगह इन्होंने नई किताबें बनाई हैं लेकिन प्राय वो संपादित बहुत है। जो संपादन किया गया है उसमें दो तरह की बेचैनी दिखलाई पड़ती है। एक कि बच्चे को राष्ट्रवादी बनाया जाए, दूसरी चिन्ता इस राष्ट्रवाद से जुड़ी हुई है, वह यह है कि वह राष्ट्रवाद एक खास ढंग का राष्ट्रवाद है यानी हिन्दू राष्ट्रवाद। तो इन दो चिन्ताओं के दबाव में किताबों का संपादन किया गया है। जाहिर है कि ये राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सिद्धांत के अनुरूप नहीं है। क्योंकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या यह कहती है कि पाठ्यपुस्तकें किसी विचारधारा के प्रचार का माध्यम नहीं बननी चाहिए, वह कोई भी विचारधारा क्यों न हो। जबकि जो संपादन किया गया है वह दरअसल इसी चिन्ता से किया गया है कि पिछली पुस्तकें संभवतया प्रर्याप्त राष्ट्रवादी नहीं थीं और उसमें भी प्रर्याप्त हिन्दू राष्ट्रवादी नहीं थीं। तो इनका एक प्रकार से हिन्दूकरण जिस प्रकार भी किया जा सके करने की बेचैनी इनमें दिखलाई पड़ती है।

प्रश्न : संपादन की जो आप बात कर रहे है कि यह एक संपादित रूप है यह सभी विषयों के बारे में कहा जा सकता है या कुछ खास विषयों में ज्यादा उभर कर आता है?

उत्तर : देखिए, मैंने सभी विषयों की किताबें तो देखी नहीं हैं अभी, लेकिन जिन विषयों की किताबें देखी, जैसे समाजविज्ञान की पुस्तकें जिनमें सबसे ज्यादा इसकी गुंजाईश होती है। चूंकि इनके पास वक्त बहुत कम था नए सिरे से पाठ लिखने का, तो पुराने पाठों में जो किया जा सकता था वही किया। मसलन एक पाठ मैं देख रहा था जो बहुत दिलचस्प निकला, जिसमें भारत के बारे में बतलाया जा रहा है। भारत के बारे में बतलाते समय पुरानी किताबें बतलाती हैं कि भारत के पड़ोस में कौन-कौन से देश हैं या भारत किन से घिरा हुआ है भौगोलिक रूप से, उसका परिवेश क्या है? तो पुरानी किताब में पाकिस्तान का नाम है, नई किताब में वो वाक्य तो है लेकिन पाकिस्तान का

नाम हटा दिया गया है। तो पाकिस्तान चूंकि असुविधाजनक नाम है तो उसका नाम हटा दिया, लेकिन दिक्कत यह है कि दूसरी जगह आपको वो नाम दिख जाएगा। इसका मतलब यह हड़बड़ी इतनी ज्यादा है कि आपकी पूरी किताब में कोई विचारात्मक संगती भी नहीं है। जहां आपकी निगाह में पड़ गया वहां आपने हटा दिया, जहां निगाह से छूट गया क्योंकि बहुत जल्दी-जल्दी कर रहे हैं, वहां वो रह गया। तो एक प्रकार से भ्रम की स्थिति छात्र के मन में भी होगी। मतलब हिन्दुकुश कहां है। आप दूसरे इस तरह के पवर्त श्रृंखलाओं के बारे में या दरियाओं के बारे में आप बतला रहे हैं कि वो कहां हैं कि वो किस देश में है, लेकिन इसके बारे में नहीं बता रहे हैं तो पद्धति क्या है? इसको लेकर एक भ्रम बना रहेगा, अध्यापक में भी बना रहेगा और बच्चों में भी बना रहेगा।

प्रश्न : आपने इन पाठ्यपुस्तकों में एक मुद्दा राष्ट्रवाद को लेकर बताया है तो आपके हिसाब से दिक्कत राष्ट्रवाद में है या हिन्दू राष्ट्रवाद की धारणा में है?

उत्तर : नहीं, दोनों से ही है। देखिए, किसी भी किताब का मकसद या स्कूली शिक्षा का मकसद आपको राष्ट्रवादी बनाना नहीं है। यह बहुत स्थिर मान्यता है। स्कूली किताब या शिक्षा का मकसद आपको एक इंसानियत तरीके से जीने की सलाहियत देना है। काबिलियत देना है, राष्ट्रवादी बनाना नहीं है। तो पहली बात तो यह है। दूसरी, चूंकि जो सरकार है उसकी राष्ट्रवाद की परिभाषा ही हिन्दू राष्ट्रवादी है तो इसलिए राष्ट्रवादी बेचैनी हमेशा हिन्दू राष्ट्रवादी बेचैनी में तब्दील हो जाती है। मसलन आप जब खगोलशास्त्र भी पढ़ा रहे हैं और उसमें तारों का वर्णन कर रहे हैं तो आपने ध्रुव तारा बतलाया तो एक पूरी कहानी दी ध्रुव तारे की जिससे पता चले कि यह दरअसल एक हिन्दू मान्यता है। इस बात को क्यों भूल जाने के लिए वे हमें कह रहे हैं या वो भूल रहे हैं कि इन किताबों को सिर्फ हिन्दू बच्चे नहीं पढ़ रहे हैं। इन किताबों को मुसलमान बच्चे भी पढ़ रहे हैं, इसाई बच्चे भी पढ़ रहे हैं, आदिवासी बच्चे भी पढ़ रहे हैं। दूसरे धर्मों और विश्वासों के बच्चे भी पढ़ रहे हैं। तो आप अगर सिर्फ एक धर्म की कहानियों पर बल दे रहे हैं तो इससे यह मालूम होता है कि आप इसी को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं, बाकियों को नहीं मानते हैं। तो यह तो बहुत साफ है कि यह हिन्दूवादी दबाव इन किताबों पर काम करता है।

प्रश्न : क्या यह पुस्तकें ज्ञान निर्माण में बच्चे की भागीदारी को सुनिश्चित करती है? यानी बच्चे के जीवनानुभवों को शामिल करने की जगह बनाती हैं?

उत्तर : ऐसा लगता नहीं है। जैसा हमारे गणित के विशेषज्ञ (रविकांत का लेख पढ़ें) ने गणित की किताबों का विश्लेषण करके बतलाया कि उनमें बहुत कम जगह है बच्चों के लिए कुछ करने की। तो गणित उनकी समझ से निकले या उनकी समझ का हिस्सा बन सके इसका अवकाश यह किताबें नहीं देतीं। यह गणित की किताबों के विश्लेषण से पता चलता है। दूसरी किताबों (अन्य विषयों से संबंधित लेख पढ़ें) से भी ऐसा पता चलता है कि पाठ्यपुस्तक बनाने वालों को यह मालूम है कि जीवन कैसे जीया जाता है, जीवन कैसे जीया जाना चाहिए और दरअसल जो बच्चे इन किताबों को पढ़ेंगे या पढ़ेंगी, उनको यह बताने को व्यग्र हैं कि जीवन इस तरह से जीया जाना चाहिए। तो इन किताबों में कोई ऊपरी तरफ से धरातल पर खड़ा होकर बच्चों को यह बतला रहा है कि आप ऐसे जीएं या ऐसे रहें यह आदर्श है। जाहिर है कि बच्चों के लिए इनमें खुद सोचने, समझने, विचार करने की जगह नहीं है, इसलिए वे अपना ज्ञान निर्माण कर पाएंगे, इसकी गुंजाइश तो बहुत ही कम दिखलाई देती है।

इन किताबों में कोई ऊपरी तरफ से धरातल पर खड़ा होकर बच्चों को यह बतला रहा है कि आप ऐसे जीएं या ऐसे रहें यह आदर्श है। जाहिर है कि बच्चों के लिए इनमें खुद सोचने, समझने, विचार करने की जगह नहीं है, इसलिए वे अपना ज्ञान निर्माण कर पाएंगे, इसकी गुंजाइश तो बहुत ही कम दिखलाई देती है।

प्रश्न : एक सवाल यह है कि क्या ये किताबें सीखने में सामाजिक, सांस्कृतिक व भाषायी विविधता जो हमारे समाज में मौजूद है उनका उपयोग करती हुई दिखाई पड़ती हैं?

उत्तर : कतई नहीं, जबकि इसकी बहुत गुंजाइश है राजस्थान जैसी जगहों में जहां खड़ी बोली हिन्दी का इस्तेमाल किया जाता है, उसके अलावा स्थानीय भाषाई

डिजाइन के प्रति कोई संवेदनशीलता इन पुस्तकों में नहीं है। तो कोई भी बच्चा इन किताबों को उठाकर रखने की चाहे ऐसा मुझे लगता नहीं है। किताबें उसे अपनी ओर खींचती नहीं है यह सबसे बड़ी बात है। बल्कि सबसे पहली बात यही है कि किताबें बच्चों की इज्जत नहीं कर रही हैं। उनको बढ़िया ढंग से डिजाइन नहीं किया गया है और बढ़िया ढंग से अच्छे कागज पर छापा नहीं गया है।

विविधता बहुत ज्यादा है। उनका रचनात्मक उपयोग किया जा सकता था किताबों में। मसलन अगर तारों के ही अलग-अलग नाम हैं या जो विभिन्न जनजातियों के नाम हैं उन नामों का इस्तेमाल किया जा सकता था, लेकिन वह प्रयास भी नहीं दिखलाई पड़ता है। तो जो मानक हिन्दू नाम हैं, सभ्य सुसंस्कृत नाम हैं, बच्चों के भी वही नाम हैं। उसी तरह आप साहित्य की पुस्तक में, समाजविज्ञान की पुस्तक में अगर कहानियां ही लेनी है समझाने के लिए तो स्थानीय लोक कथाओं के खजाने से ली जा सकती थीं। लेकिन साहित्य की हर किताब में आपको यह दिखलाई पड़ेगा कि उन्होंने किया क्या है। एक अध्याय उन्होंने राजस्थानी का दे दिया, इस तरह उन्होंने कर्तव्यता का निर्वहन कर दिया स्थानीयता के प्रति। जबकि स्थानीयता एक दृष्टि है जिसको हर पाठ में ही रचा-बसा होना चाहिए या खासकर अभ्यास में उसका इस्तेमाल होना चाहिए। अगर हिन्दी की किताब है या समाजविज्ञान की किताब है या कोई और किताब है तो उसका इस्तेमाल हो सकता है। गणित में भी हो सकता है। क्योंकि नाप-जोख करने के स्थानीय तरीके मौजूद हैं उनके लिए अलग शब्द हैं उन सबका इस्तेमाल हो सकता है लेकिन उनका इस्तेमाल नहीं किया गया।

प्रश्न : पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न समुदायों और वर्गों के प्रतिनिधित्व की स्थिति के बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर : इस मामले में तो पाठ्यपुस्तकें पुरी तरीके से असफल दिखलाई पड़ती हैं। वे भूल गई हैं कि इस समाज में अलग-अलग धर्मों, अलग-अलग समुदायों, अलग-अलग जातियों-जनजातियों के लोग रहते हैं। इन किताबों को देखने से लगता है कि एक ही तरह के लोग यहां हैं वो जैसा मैंने कहा कि वो हिन्दू हैं तो जब अन्य धर्मों के, अन्य समुदायों के बच्चे इनको पढ़ेंगे उन्हें लगेगा कि वो किसी और की कहानी पढ़ रहे हैं। यहां तक कि जब इन किताबों को देख रहे थे तो इन किताबों में संवेदनशीलता इतनी भी नहीं है कि प्राय हिन्दू धर्म से जुड़ी हुई चीजों को हमारी और बाकी को उनकी या वे करके संबोधित कर रही हैं। तो ये किताबें खुद ही हम और वे का निर्माण का कर रही हैं जिसमें हम हिन्दू है और वे मुसलमान, ईसाई या कोई और हैं। तो हम में वो शामिल ही नहीं हैं।

प्रश्न : इन किताबों में जेण्डर की संवेदनशीलता के बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर : कुछ जबानी जमा-खर्च है। कि आपने चित्र बनाए जिसमें लड़का-लड़की दोनों एक साथ खड़े हैं। इसको जेण्डर के प्रति संवेदनशीलता नहीं कहते हैं। जेण्डर पुनः एक दृष्टि है जो आपके पाठ निर्माण में दिखलाई पड़नी चाहिए। तो वह नहीं के बराबर हैं। जैसा मैंने कहा कि यह बहुत ही सांकेतिक है कि आपने चित्र बनाया लड़का-लड़की दोनों बना दिए काम खत्म हो गया। जेण्डर के प्रति जो कर्तव्य था उसका निर्वाह हो गया। लेकिन जेण्डर तो ये है नहीं। तो उसकी सावधानी किताबों में दिखलाई नहीं पड़ती है।

प्रश्न : क्या ये पाठ्यपुस्तकें बच्चों को आलोचनात्मक चिंतन करने का अवसर मुहैया करवाती हैं? यानी कि क्या इनमें बच्चों को अपनी मान्यताओं को जांचने और उन पर सवाल उठाने के मौके हैं?

उत्तर : पहले हमने जो बातचीत की उसी से बहुत साफ है कि ऐसा नहीं है चूंकि बच्चों की खुद की ही पैठ इन किताबों में नहीं है, उनके लिए जगह ही नहीं बन पा रही है। वे सवाल करें इसका सवाल ही नहीं उठता। सवालों के उत्तर किताबें दे रही हैं और उनको मानने के लिए कह रही हैं तो फिर आलोचनात्मक चिन्तन का प्रश्न कहां उठता है। एक आदर्श देश है, आदर्श समाज है, आदर्श ढंग से रहने का तरीका मालूम है किताबों को तो फिर बच्चे सवाल कैसे कर सकते हैं। उन्हें सिर्फ मानना है, इसलिए आलोचनात्मकता के लिए तो कोई स्थान मुझे दिखलाई नहीं पड़ा।

प्रश्न : इस बातचीत से ऐसा लग रहा है कि जो हमारी सामाजिक विविधता है उसको जगह नहीं मिली किताबों में और एक खास संस्कृति का वर्चस्व इनमें बढ़ता हुआ दिख रहा है, क्या इससे आप इस्तेफाक रखते हैं?

उत्तर : हां, बिलकुल। मैंने कहा कि इन पाठ्यपुस्तकों संपादन ही इस बेचैनी से किया गया है या इस दबाव में किया गया है कि इनका हिन्दूकरण कैसे किया जा सकता है। क्योंकि ज्यादा वक्त नहीं था, इसलिए नए सिरे से पाठ नहीं लिखे गए और जो पाठ लिखे गए उनमें जहां-जहां जगह बनी वहां-वहां ये काम कर दिया गया। अब अगर आप अम्बेडकर पर पाठ को ही देखेंगे तो जो भी अम्बेडकर से परिचित है वो जानता है कि अम्बेडकर के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है मनुस्मृति का दहन। लेकिन वह पाठ इसकी चर्चा ही नहीं करता। यह बात सबको मालूम है जो अम्बेडकर को जानते हैं और ये बच्चे भी जब बड़े होकर जानेगें तो उनको मालूम होगा कि अम्बेडकर ने कहा था कि हिन्दू धर्म से छुटकारे के बिना उपाय नहीं है। बौद्ध धर्म उन्होंने स्वीकार किया था। लेकिन यह पाठ उसकी चर्चा नहीं करता है बल्कि वो यह कह रहा है कि वे हिन्दू धर्म के भीतर ही रहकर सब कुछ करना चाहते थे। तो जब वे बड़े होंगे उनके हाथ में अम्बेडकर से संबंधित दूसरी जानकारी आएगी तो उन्हें सदमा पहुंचेगा और उन्हें इसका भी बुरा लगेगा कि उनकी स्कूली किताबें छिपा रही थीं, वो कुछ बता नहीं रही थीं।

प्रश्न : इन पाठ्यपुस्तकों में चित्रों की स्थिति क्या है? उसके बारे में आप कुछ कहेंगे?

उत्तर : पाठ्यपुस्तकें सुरुचित होनी चाहिए। अच्छे ढंग से उनकी डिजाइन की जानी चाहिए, छपाई अच्छी होनी चाहिए, चित्र अच्छे बने होने चाहिए। लेकिन आप किताब उठाकर देख लें उनको पढ़ना मुश्किल है क्योंकि स्याही ही इतनी कम है। उसमें इतनी बचत की गई है या भ्रष्टाचार हुआ होगा जो भी हुआ या हड़बड़ी में छपी हैं कि उनको बच्चे पढ़ेगें कैसे उसको लेकर मुझे बहुत चिंता है। उनको पढ़ना बड़ा कठिन है, बहुत खराब ढंग से छपी हुई किताबे हैं। डिजाइन के बारे में तो आप बात ही नहीं कर सकते। डिजाइन के प्रति कोई संवेदनशीलता इन पुस्तकों में नहीं है। तो कोई भी बच्चा इन किताबों को उठाकर रखने की चाहे ऐसा मुझे लगता नहीं है। किताबें उसे अपनी ओर खींचती नहीं है यह सबसे बड़ी बात है। बल्कि सबसे पहली बात यही है कि किताबें बच्चों की इज्जत नहीं कर रही हैं। उनको बढ़िया ढंग से डिजाइन नहीं किया गया है और बढ़िया ढंग से अच्छे कागज पर छापा नहीं गया है।

प्रश्न : समाजविज्ञान की किताबों में एनसीईआरटी ने एक अच्छा प्रयोग पिछले समय किया था कि बीच-बीच में कार्टून डाले गए थे। चूंकि हमारे यहां कार्टून काफी राजनैतिक दृष्टि से बनाए जाते हैं। उस परम्परा को हम राजस्थान की पिछली किताबों में मौजूद देखते हैं इन नई किताबों में क्या स्थिति है?

उत्तर : उनको निकाल दिया गया है। मैंने देखा कि पिछली किताबों में कार्टून हैं और इन किताबों में से कार्टून को निकाल दिया गया है। यह समझ से बाहर है कि उन कार्टूनों को क्यों निकाल दिया गया या कार्टूनों को हल्का समझा गया। जहां ज्ञान चर्चा हो रही है वहां कार्टून जैसी चीज क्या काम कर रही है। तो एक जो उपकरण पिछली पाठ्यपुस्तकों के लेखकों ने निकाला था जिसमें छात्रों को ऐसा ना लगे कि ज्ञान समझने में इतनी भारी भरकम चीज होती है कि आप इस तक पहुंच नहीं सकते हैं। उस अवसर को गवां दिया है इन किताबों ने।

प्रश्न : राजस्थान की इन नई किताबों पर आपकी ओर से कोई और टिप्पणी जो बताना चाहें?

उत्तर : मुझे चिन्ता सिर्फ इस बात की है कि किसी भी विचारधारा की पार्टी सरकार में आए। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह एक खास समय में इस बात में सफल हुई है कि वह अपने विचारों के इर्द-गिर्द बहुमत को इकट्ठा कर सके इस वजह से वह सरकार में आई है। यानी चुनाव जिस वक्त हो रहे हैं उस वक्त कई कारणों से दूसरे विचारों के मुकाबले उसके विचारों को लोगों ने तरजीह दी है। लेकिन उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि दूसरे विचार समाज में मौजूद हैं, विद्यमान हैं और उसे अभी बहुमत मिला है और ये पांच साल के बाद बहुमत चला जा सकता है। तो वह प्रत्येक तबके की सरकार है। दल के रूप में

मैंने कहा कि इन पाठ्यपुस्तकों संपादन ही इस बेचैनी से किया गया है या इस दबाव में किया गया है कि इनका हिन्दूकरण कैसे किया जा सकता है। क्योंकि ज्यादा वक्त नहीं था, इसलिए नए सिरे से पाठ नहीं लिखे गए और जो पाठ लिखे गए उनमें जहां-जहां जगह बनी वहां-वहां ये काम कर दिया गया।

उसका विचार कुछ भी हो, जनादेश का अर्थ यह नहीं है कि उसे अपना विचार लादने की या हर तरफ से उस विचार को लागू करने का काम दिया गया है। लेकिन अगर आप इस भ्रम में पड़ जाएं और जनतांत्रिक सिद्धांत को भूल जाएं तब गलती होती है। चूंकि यह एक ऐसी पार्टी की सरकार है जिसका यह खयाल है कि यह देश ही गलत तरह से बना है। तो इस देश को दुरुस्त कर दिया जाना चाहिए, तो वह जनतंत्र को भी सिर्फ साधन के रूप में इस्तेमाल करती है। स्कूल एक ऐसी जगह है जहां समाज के हर तबके के बच्चे इकट्ठा होते हैं। तो किसी पार्टी को अलग से जोर लगाने की जरूरत नहीं है। पैसा खर्च नहीं करना है, अपने कार्यकर्ता नहीं लगाने हैं। अगर आपने यह सोच लिया है कि स्कूलों के माध्यम से अपनी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करेंगे क्योंकि वहां लोग आराम से उपलब्ध हैं। तो यह अपराध है। किताबें हों या स्कूल हों यह सब कर दाताओं के पैसे से चलते हैं। कर दाता हर समुदाय के हैं, हर जाति के हैं, हर धर्म के हैं तो आप मेरे पैसे से मेरे ही खिलाफ काम नहीं कर सकते।

प्रश्न : कितना समय गुजर गया हमारे यहां हम पुस्तक निर्माण की प्रक्रिया को संस्थागत जामा नहीं पहना पाए। पिछले समय 2005 में जब एनसीईआरटी में किताबें बनी थी तब कोशिश की गई थीं कि पुस्तक बनने की ये पूरी प्रक्रिया संस्थागत रूप ले पाए और उस दौर में हमने देखा भी आस-पास कई राज्यों में वो प्रक्रियाएं शुरू भी हुई। लेकिन आज फिर से ऐसा लगता है स्थिति प्रतिगामि हो गई है। इस संदर्भ में आपकी कोई टिप्पणी?

उत्तर : यह दुर्भाग्य की बात है कि पाठ्यपुस्तकें हमेशा चर्चा के केंद्र में रहती हैं। सबसे ज्यादा बहस उन्हीं पर होती है। अगर स्कूली शिक्षा की मीडिया में उपस्थिति को आप देख लें तो सबसे ज्यादा बहस इस पर होती है कि किताबें किस तरह की हैं। महाराणा प्रताप हैं या अकबर हैं। नेहरू हैं या नहीं हैं। लेकिन पाठ्यपुस्तक है क्या, पाठ्यपुस्तक बननी कैसे चाहिए इसको लेकर संस्थागत स्तर पर विचार-विमर्श का कोई अवसर हमारे यहां नहीं है। एनसीईआरटी ने 2005 के बाद एनसीईआरटी के भीतर ही एक विंग बनाने कोशिश की थी, लेकिन उसे भंग कर दिया गया। और अब कहीं ऐसा कोई संस्थानिक प्रयास है नहीं। इसके बारे में अवश्य हम सब लोगों को सोचना पड़ेगा कि अगर सरकारी नहीं तो सामाजिक तौर पर हमें यह पहल करनी पड़ेगी जिससे हम पाठ्यपुस्तकों से जुड़ी हुई स्मृतियों को भी एक साथ रखेंगे। वरना 2006 से 2009 के वर्ष तक राजस्थान में क्या हुआ था पाठ्यपुस्तकों को लेकर अब अगर उसकी जानकारी लेनी हो तो हमें कहां जाना चाहिए हमें नहीं मालूम। क्योंकि किसी एक जगह वे दस्तावेज मौजूद नहीं हैं। ◆

परिचयः अपूर्वानन्द दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर हैं, विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय हैं और साहित्यिक समालोचक हैं।